भारतीय ज्ञान प्रणाली उद्‌गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

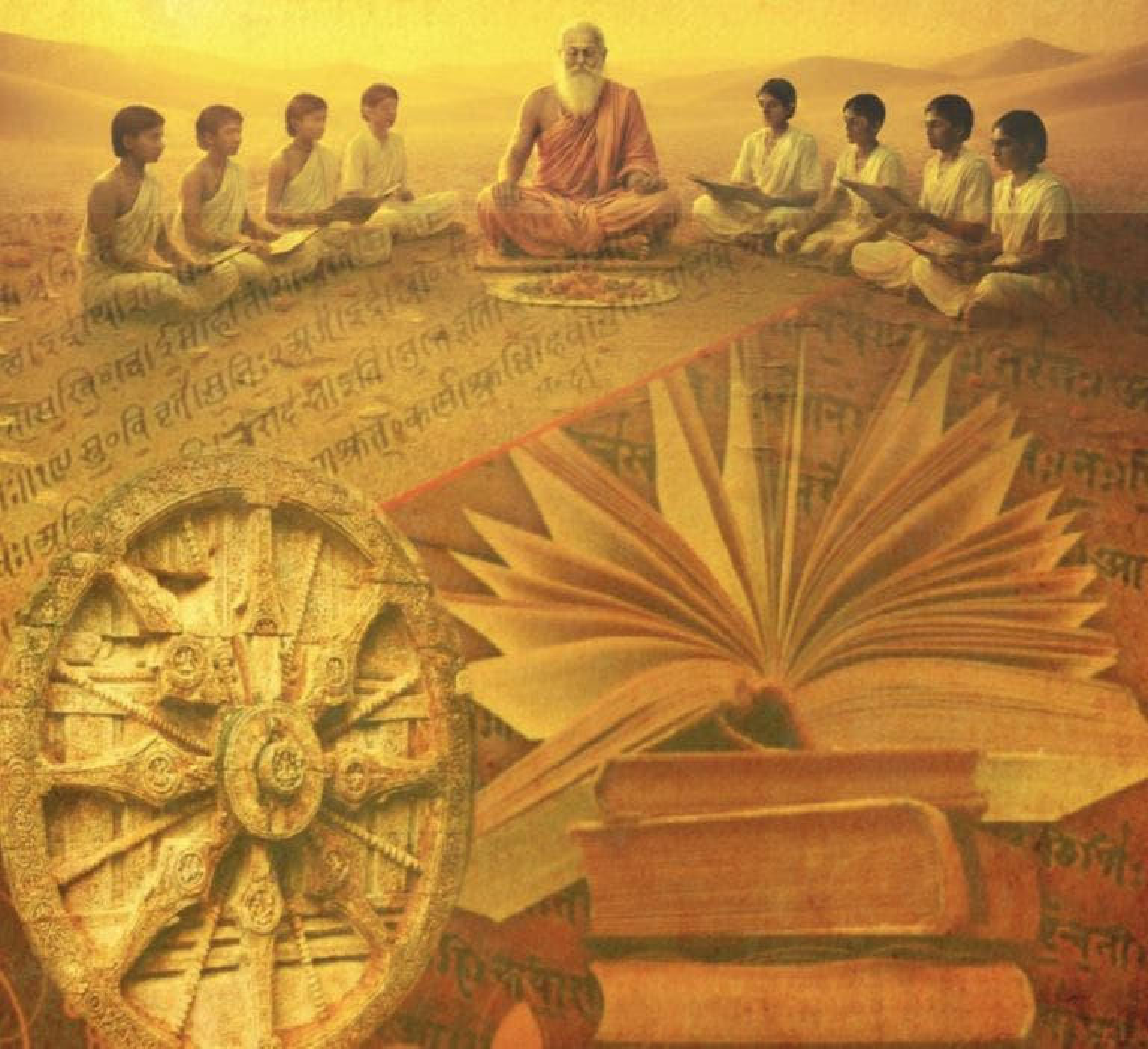

भारतीय ज्ञान प्रणाली
उद्गम और विकास

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com
मो. 9660111549

संस्करण
प्रथम 2026

ISBN **: 978-81-993854-1-2**

मूल्य - 400/-

रचना - भारतीय ज्ञान प्रणाली-उद्गम और विकास

सम्पादक - डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

आवरण - श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

31

कबीर और समाज सुधार आंदोलन

डॉ. कल्पना महावर
विभागाध्यक्ष (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

समाज सुधारक कबीर भारतीय सामाजिक चेतना के ऐसे प्रखर प्रतिनिधि हैं जिन्होंने व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रित संबंध को गहराई से समझा और उसे अपने चिंतन तथा कर्म में उतारा। कबीर का मानना था कि समाज व्यक्ति से बनता है और व्यक्ति समाज से; दोनों एक-दूसरे के बिना अपूर्ण हैं। इसलिए व्यक्ति का जीवन तभी सार्थक है जब वह अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर जनहित में स्वयं को समर्पित करे। यही भावना कबीर के सम्पूर्ण जीवन और विचारधारा का मूल आधार है।

कबीर के हृदय में सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध एक प्रज्वलित ज्वाला सदा धधकती रहती थी। वे संकीर्ण जातिवाद, ऊँच-नीच, छुआछूत और धार्मिक आडम्बरों से गहराई से व्यथित थे। उनके लिए मानवता सर्वोपरि थी। उनमें न तो जातिगत अहंकार था और न ही वैयक्तिक संकीर्णता, बल्कि एक व्यापक सामाजिक दृष्टि थी। वे ऐसे समाज की कल्पना करते थे जहाँ मनुष्य को मनुष्य के रूप में सम्मान मिले, न कि जाति, धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर आँका जाए।

कबीर की साधना यद्यपि वैयक्तिक थी, परंतु उसका लक्ष्य कभी भी केवल आत्मकल्याण तक सीमित नहीं रहा। उनकी साधना गहन वनों की एकान्त तपस्या के समान पलायनवादी या निष्फल नहीं थी, बल्कि वह समाज के बीच रहकर समाज को दिशा देने वाली साधना थी। उनके विचार समाज कल्याण के लिए अमृतवर्षा के समान थे, जिनसे विगलित, जड़ और रूढ़ समाज में नवचेतना का संचार हुआ। इसीलिए उनकी वाणी आज भी समाज को पल्लवित और पुष्पित करती प्रतीत होती है।

कबीर आशावादी समाज सुधारक थे। वे सामाजिक कुरीतियों से निराश होकर समाज से पलायन नहीं करते, बल्कि उन्हीं बुराइयों से जूझकर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वे एक क्रान्तिकारी समाजसेवी की भाँति शोषितों, पीड़ितों और पददलितों के पथप्रदर्शक बने। उनकी वाणी में करुणा भी है और विद्रोह भी, जो

अन्याय के विरुद्ध जनमानस को जाग्रत करती है।

भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद, छुआछूत, अवतारवाद और कर्मकाण्डीय जड़ता के विरुद्ध कबीर ने आजीवन संघर्ष किया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि जन्म से कोई ऊँचा या नीचा नहीं होता, बल्कि कर्म और आचरण से मनुष्य की महानता निर्धारित होती है। उनके लिए ईश्वर मंदिर या मस्जिद में नहीं, बल्कि मानव के भीतर निवास करता है। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक संकीर्णताओं को तोड़कर मानवतावादी संस्कृति की स्थापना की।

कबीर कालीन परिस्थितियाँ :

कबीर जिस युग में प्रकट हुए, वह भारतीय समाज के लिए अत्यन्त संक्रमणकालीन और संघर्षपूर्ण समय था। यह मध्यकाल का वह दौर था जब समाज अनेक प्रकार की रूढ़ियों, पाखण्डों, धार्मिक कट्टरताओं और सामाजिक विषमताओं से ग्रस्त था। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अत्यन्त सारगर्भित शब्दों में कबीर की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा है कि कबीर ऐसे प्रशस्त चौराहे पर खड़े थे जहाँ से हिन्दुत्व और मुसलमानत्व, ज्ञान और अशिक्षा, भक्ति और योग, निर्गुण और सगुण—सभी मार्ग अलग-अलग दिशाओं में जाते दिखाई देते थे। इस अद्वितीय स्थिति के कारण कबीर दोनों परम्पराओं के गुण-दोषों को भली-भाँति देख सके और उन्होंने अपने विवेक से उनका निर्भीक मूल्यांकन किया।

कबीरकालीन समाज जातिगत, वंशगत और धर्मगत रूढ़ियों के मायाजाल में जकड़ा हुआ था। वर्णाश्रम व्यवस्था कठोर रूप ले चुकी थी, जिसमें ऊँच-नीच और छुआछूत ने मानवीय मूल्यों को कुचल दिया था। जन्म के आधार पर मनुष्य को श्रेष्ठ और हीन ठहराया जाता था। पण्डित शास्त्रों के नाम पर अपने वर्चस्व को बनाए हुए थे और सामान्य जन अज्ञान एवं भय में जी रहा था। दूसरी ओर मुस्लिम समाज में भी बाह्य आडम्बरों, कर्मकाण्डों और धार्मिक औपचारिकताओं का बोलबाला था। नमाज, रोजा, हज और मस्जिद को ही धर्म का सार मान लिया गया था, जबकि नैतिकता और मानवता उपेक्षित हो रही थीं।

ऐसे वातावरण में कबीर ने जाति, धर्म, सम्प्रदाय, शास्त्र और परम्परा—सभी की कठोर आलोचना की। वे एक ओर पण्डितों की कपटपूर्ण विद्वत्ता पर प्रहार करते हैं तो दूसरी ओर मस्जिद, नमाज और हज की निरर्थकता को उजागर करते हैं। उनकी वाणी में दोनों धर्मों के प्रति समान रूप से प्रश्नवाचक स्वर है। वे स्पष्ट कहते हैं कि न हिन्दू अपनी हिन्दुआई को सही रूप में जी रहा है और न मुसलमान अपनी तुरकाई को। इस प्रकार कबीर ने धार्मिक पहचान के बाहरी खोल को तोड़कर सत्य और

मानवता को केन्द्र में रखा।

वर्णाश्रम व्यवस्था पर उनका व्यंग्य अत्यन्त तीखा और यथार्थपूर्ण है। वे जन्म से ब्राह्मण और शूद्र होने के भेद को अस्वीकार करते हुए पूछते हैं कि एक ही माता-पिता से उत्पन्न मनुष्य में शुद्धता और अपवित्रता का भेद कैसे हो सकता है। उनके प्रश्न समाज की आत्मा को झकझोर देते हैं। बनारस जैसे धार्मिक केन्द्रों में फैले पाखण्ड पर भी कबीर ने करारा प्रहार किया। साधु-संतों के वेश में घूमने वाले ढोंगियों को वे 'बनारस के ठग' कहते हैं और स्पष्ट करते हैं कि बाहरी चिह्नों से कोई हरिभक्त नहीं बनता।

कबीर ने केवल धार्मिक और सामाजिक पाखण्ड पर ही नहीं, बल्कि राज्य और सत्ता की अन्यायपूर्ण व्यवस्था पर भी चोट की। काजियों और शासकीय न्याय-प्रणाली की आडम्बरिकता को वे निर्भीकता से उजागर करते हैं। उनके अनुसार ईश्वर ने कभी अत्याचार की अनुमति नहीं दी और जो धर्म के नाम पर हिंसा या अन्याय करता है, वह ईश्वर का सेवक नहीं हो सकता। इस दृष्टि से कबीर सत्य और न्याय के ऐसे साधक प्रतीत होते हैं, जो सुकरात की भाँति यन्त्रणा सहकर भी सत्य का साथ नहीं छोड़ते।

वस्तुतः कबीर का जीवन और काव्य सामन्ती व्यवस्था, सामाजिक रूढ़ियों, धार्मिक पाखण्डों और मिथ्याचार के विरुद्ध एक सशक्त जनआन्दोलन था। मध्ययुग के घने अन्धकार में उनकी वाणी अमर आलोक के समान थी, जिसने जनमानस को दिशा दी। उन्होंने यह उद्घोष करके कि 'साईं के सब जीव हैं, कीटी कुंजर दोय', सम्पूर्ण मानवता की समानता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया और ईश्वर की उपासना पर सबका समान अधिकार घोषित किया।

समन्वय भावना :

कबीर एक युगद्रष्टा संत-कवि थे। उनकी दृष्टि संकीर्ण नहीं, बल्कि समग्र जीवन पर केन्द्रित थी। जीवन को वे केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं मानते थे, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक यथार्थों से जुड़ा हुआ देखते थे। चूँकि जीवन समाज का अभिन्न अंग है, इसलिए समाज की विकृतियाँ, विडम्बनाएँ और समस्याएँ उनकी दृष्टि से ओझल नहीं रह सकीं। कबीर का काव्य जीवन की इन्हीं जटिलताओं का साक्षी, परीक्षक और मार्गदर्शक है। उनका साहित्य न किसी एक धर्म, वर्ग या सम्प्रदाय तक सीमित है, बल्कि वह हिन्दू, मुसलमान और सबसे बढ़कर सम्पूर्ण मानवता के लिए है। इतनी व्यापक भावभूमि पर विचरण करने वाले कवि के लिए समन्वय का मार्ग स्वाभाविक हो जाता है और कबीर ने इसी मध्यम,

संतुलित और विवेकपूर्ण मार्ग को अपनाया।

कबीर के अनुसार अतिवाद चाहे किसी भी ओर का हो, वह विनाशकारी है। इसी कारण वे मध्यम मार्ग की प्रतिष्ठा करते हैं। उनका प्रसिद्ध दोहा यह स्पष्ट करता है कि जो व्यक्ति बीच के मार्ग पर टिके रहता है, वही संसार-सागर से पार हो सकता है, जबकि किसी एक छोर को पकड़ने वाला अंततः डूब जाता है। यही समन्वय भावना उनके काव्य की आत्मा है। कबीर का काव्य व्यष्टि और समष्टि, अर्थात् व्यक्ति और समाज—दोनों के मिलन-बिन्दु पर स्थित है। एक ओर वे आत्मिक शुद्धि और व्यक्तिगत साधना के लिए 'सबद' रचते हैं, तो दूसरी ओर सामान्य जन को जाग्रत करने के लिए 'साखी' के माध्यम से व्यावहारिक ज्ञान देते हैं। इस प्रकार उनका काव्य न तो केवल आत्मकेंद्रित है और न ही मात्र सामाजिक उपदेश, बल्कि दोनों का सन्तुलित समन्वय है।

कबीर ने निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग का भी सुन्दर समन्वय किया है। वे संसार से भागने की शिक्षा नहीं देते, बल्कि संसार में रहते हुए सत्य, प्रेम और करुणा के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। उनकी साधना लोक-विमुख नहीं, बल्कि लोक-कल्याण से जुड़ी हुई है। यही कारण है कि उनका आध्यात्म समाज सुधार का माध्यम बन जाता है।

धार्मिक आडम्बरों के विषय में कबीर का दृष्टिकोण अत्यन्त कठोर और निर्भीक है। उन्होंने धर्म के नाम पर चल रहे बाह्याचारों, अन्धविश्वासों और पाखण्डों का तीव्र खण्डन किया। हिन्दुओं के व्रत, मूर्तिपूजा, गंगास्नान, केश-कुंडल और जीव-हिंसा पर वे उतनी ही तीखी टिप्पणी करते हैं, जितनी मुसलमानों के रोजा, नमाज, अजान और मस्जिद-निर्माण पर। उनके अनुसार पत्थर की मूर्ति या ईंट-पत्थर से बनी मस्जिद में ईश्वर की खोज करना एक प्रकार का भ्रम है। यदि पत्थर पूजने से ईश्वर मिल सकता, तो पहाड़ की पूजा से ही मुक्ति मिल जाती। वे इस बात पर भी व्यंग्य करते हैं कि जो चक्की घर में अन्न पीसती है, उसे कोई नहीं पूजता, जबकि बाहर रखे पत्थर को पूजने लोग दौड़े चले जाते हैं।

कबीर ने व्रत और रोजा की भी निरर्थकता को उजागर किया है। उनके अनुसार ये बाह्याचार मन को शुद्ध करने के स्थान पर उसे और अधिक मलिन कर देते हैं। यदि उपवास रखकर भी मन में लालच, क्रोध और हिंसा बनी रहती है, तो ऐसे व्रत या रोजा का कोई मूल्य नहीं। वे स्पष्ट कहते हैं कि दिन में रोजा रखकर रात में हिंसा करना ईश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकता। इसी प्रकार गंगा-स्नान, तीर्थयात्रा और हज पर भी उनका तर्कपूर्ण प्रहार है। उनका कहना है कि यदि स्नान मात्र से मुक्ति मिलती,

तो जलचर प्राणी कब के मुक्त हो चुके होते।

छुआछूत, केश-मुण्डन और बाह्य शुद्धता के नियमों पर कबीर का व्यंग्य अत्यन्त सार्थक है। वे प्रश्न उठाते हैं कि जब संसार की कोई वस्तु पूर्णतः पवित्र नहीं, तो किसी विशेष स्थान पर बैठकर भोजन करने या सिर मुँडाने से मुक्ति कैसे मिल सकती है। यदि केश मुँडाने से ईश्वर की प्राप्ति होती, तो भेड़ें सबसे पहले बैकुण्ठ पहुँच जातीं। इस प्रकार कबीर तर्क और अनुभव के आधार पर धार्मिक रूढ़ियों की जड़ पर प्रहार करते हैं।

श्राद्ध, पिण्डदान और मृतक कर्मकाण्डों पर भी कबीर ने गहरी चोट की है। उनके अनुसार जो व्यक्ति जीवित रहते माता-पिता की सेवा नहीं करता, वही उनके मरने के बाद दिखावटी कर्मकाण्ड करता है। ऐसी श्रद्धा केवल पाखण्ड है, न कि सच्चा धर्म। इसी प्रकार धर्म के नाम पर मद्य-मांस सेवन और जीव-हिंसा की उन्होंने कटु निन्दा की और उसके दुष्परिणामों से जनसाधारण को सावधान किया।

राम और रहीम के नाम पर होने वाले धार्मिक संघर्षों और साम्प्रदायिक द्वेष पर कबीर का स्वर अत्यन्त मानवीय और उदात्त है। वे कहते हैं कि हिन्दू राम को प्रिय मानता है और मुसलमान रहीम को, परन्तु दोनों आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं, जबकि ईश्वर के वास्तविक रहस्य को कोई नहीं समझता। उनके अनुसार तिलक, टोपी, माला और धार्मिक चिह्न मात्र दिखावे हैं; इनसे न तो ईश्वर की प्राप्ति होती है और न ही आत्मिक शुद्धि।

वास्तविक धार्मिक जीवन :

कबीर ने केवल धार्मिक आडम्बरों और सामाजिक कुरीतियों का खण्डन ही नहीं किया, बल्कि यह भी स्पष्ट रूप से बताया कि वास्तविक धार्मिक जीवन कैसा होना चाहिए। उनके अनुसार धर्म बाहरी आचरण, वेशभूषा या कर्मकाण्डों का नाम नहीं है, बल्कि वह मनुष्य के आन्तरिक गुणों और व्यवहार में प्रकट होता है। दया, करुणा, मधुर वाणी, सहनशीलता, क्षमा और परोपकार—ये सभी गुण कबीर की दृष्टि में सच्चे धार्मिक जीवन के अनिवार्य आधार हैं। जो व्यक्ति इन गुणों से युक्त है, वही वास्तव में धार्मिक कहलाने का अधिकारी है।

कबीर ने मन की पवित्रता पर विशेष बल दिया है। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि शुद्ध हृदय के बिना ईश्वर की प्राप्ति असम्भव है। वे स्पष्ट कहते हैं कि यदि हृदय में मलिनता, अहंकार, द्वेष और वासना भरी हो, तो बाहरी पूजा-पाठ और तीर्थयात्रा निरर्थक हैं। मन की शुद्धि के लिए उन्होंने सत्संग को अत्यन्त आवश्यक माना है, क्योंकि सत्संग से विचार शुद्ध होते हैं और जीवन की दिशा सही होती है। उनके

अनुसार जिस व्यक्ति का मन निर्मल हो, हृदय में सत्य और प्रेम का निवास हो तथा विचार सात्विक हों, वही सच्चा धार्मिक मनुष्य है। ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में सन्त है।

कबीर द्वारा प्रतिपादित सन्त के लक्षण वस्तुतः आदर्श धार्मिक व्यक्ति के गुण हैं। उनके अनुसार सन्त वह है जो वैरभाव से रहित हो, जिसकी कोई स्वार्थपूर्ण कामना न हो, जो ईश्वर से प्रेम करता हो और विषय-वासनाओं से स्वयं को अलग रखता हो। ऐसा सन्त समाज के लिए प्रेरणा स्रोत बनता है और उसके आचरण से धर्म की सच्ची पहचान होती है।

सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों की भर्त्सना :

कबीर ने समाज में व्याप्त छुआछूत, जातिभेद, धन-लोभ, वासना, मद्यपान, परनिन्दा और अन्य अनेक कुप्रवृत्तियों की कठोर आलोचना की। उनके समय में छुआछूत की भावना अपने चरम पर थी। धर्म इतना दुर्बल और संकीर्ण हो गया था कि भोजन के छू जाने मात्र से अपवित्रता मानी जाती थी और पवित्रता इतनी क्षणिक थी कि किसी के स्पर्श से ही भंग हो जाती थी। कबीर ने इस विडम्बनापूर्ण स्थिति पर तीखा व्यंग्य करते हुए यह प्रश्न उठाया कि यदि जल, स्थल, जन्म और मृत्यु—सबमें सूतक ही सूतक है, तो फिर वास्तव में कौन पवित्र रह सकता है। इस प्रकार वे पण्डितों की संकीर्ण सोच को चुनौती देते हैं।

जातिभेद के प्रति कबीर का दृष्टिकोण अत्यन्त आक्रामक और स्पष्ट था। वे जन्म के आधार पर ब्राह्मण और शूद्र में भेद को अन्याय और अमानवीय मानते थे। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि जब समस्त सृष्टि एक ही ज्योति से उत्पन्न हुई है, तो ऊँच-नीच का प्रश्न ही निरर्थक हो जाता है। उन्होंने निर्भीक स्वर में कहा कि यदि कोई स्वयं को जन्म से श्रेष्ठ मानता है, तो उसे यह भी बताना चाहिए कि वह किसी भिन्न मार्ग से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार कबीर ने जातिवाद की जड़ पर सीधा प्रहार किया।

कबीर ने धन-संचय की प्रवृत्ति को भी घातक बताया है। उनके अनुसार धन का अत्यधिक संग्रह मनुष्य को लोभी, अहंकारी और अमानवीय बना देता है। वे कहते हैं कि मनुष्य वही धन एकत्र करे जो आगे काम आए, क्योंकि कोई भी व्यक्ति सिर पर पोटली बाँधकर इस संसार से धन नहीं ले जा सका है। इस कथन के माध्यम से कबीर मानव को जीवन की नश्वरता और धन की क्षणभंगुरता का बोध कराते हैं।

वासना का विरोध :

कबीर ने परनिन्दा और अन्य सामाजिक विकृतियों के साथ-साथ विषय-

वासना मूलक प्रवृत्तियों का भी अत्यन्त कठोर विरोध किया है। उनकी दृष्टि में वासना मनुष्य को आत्मिक पतन की ओर ले जाने वाली सबसे बड़ी बाधा है, क्योंकि यह मन को चंचल, असंयमित और विकारग्रस्त बना देती है। जब तक मनुष्य वासना के बन्धन में जकड़ा रहता है, तब तक उसके भीतर न तो सच्ची भक्ति का उदय हो सकता है और न ही नैतिक जीवन का विकास सम्भव है। इसी कारण कबीर ने वासना को मनुष्य के पतन का मूल कारण मानते हुए उससे सावधान किया है।

वासना के विरोध के ही परिणामस्वरूप कहीं–कहीं उनकी वाणी में नारी–निन्दा का स्वर दिखाई देता है और कहीं–कहीं वे ब्रह्मचर्य और संयम का उपदेश देते हुए प्रतीत होते हैं। वस्तुतः यह नारी–विरोध नहीं, बल्कि वासना–विरोध है। कबीर स्त्री को नहीं, अपितु उस आसक्ति और मोह को दोषी ठहराते हैं जो मनुष्य को विवेकहीन बना देती है। उनके अनुसार जब कामना पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है, तभी मनुष्य आत्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है।

कबीर सदैव सात्विक प्रवृत्तियों के समर्थक रहे। उन्होंने मानव जीवन से क्रोध, काम, मद, लोभ, मोह, हिंसा और कपट जैसी तामसिक और राजसिक प्रवृत्तियों को हटाकर उनके स्थान पर प्रेम, संयम, नम्रता, निष्कामता, अहिंसा और निष्कपट आचरण की स्थापना का प्रयास किया। उनके लिए धर्म का अर्थ आत्मसंयम और नैतिक अनुशासन था, न कि इन्द्रिय–भोग और दिखावटी आचरण।

सात्विकता के प्रचार के साथ–साथ कबीर ने समाज में समता की भावना को भी प्रतिष्ठित किया। उनके अनुसार वासना, लोभ और अहंकार ही असमानता, शोषण और भेदभाव को जन्म देते हैं। जब मनुष्य इन विकारों से मुक्त होता है, तभी वह सभी को समान दृष्टि से देख सकता है। इस प्रकार कबीर का वासना–विरोध केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक समरसता और मानवीय समानता की स्थापना का भी सशक्त माध्यम बन जाता है।

साम्प्रदायिक सौहार्द :

कबीर भारतीय समाज के ऐसे महान संत और समाज सुधारक थे जिन्होंने न केवल वर्ण–व्यवस्था की असमानताओं का विरोध किया, बल्कि हिन्दू और मुसलमान के बीच चली आ रही चिरकालिक शत्रुता की भी निरर्थकता को सशक्त रूप से उजागर किया। वे साम्प्रदायिकता के कटु विरोधी थे और मानवता को धर्म से ऊपर स्थान देते थे। कबीर की दृष्टि में मनुष्य की पहचान उसका धर्म, जाति या सम्प्रदाय नहीं, बल्कि उसका आचरण और उसकी मानवीय संवेदना थी। इसी कारण वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी को एक ही स्तर पर रखने के पक्षधर थे।

कबीर के काव्य में वह अद्भुत सामर्थ्य दिखाई देता है, जो हिन्दू और मुसलमान के बीच खींची गई साम्प्रदायिक रेखाओं को तोड़कर दोनों को एक ही भावपाश में बाँध देता है। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जो कोई भी भ्रम में पड़कर हिन्दू और तुर्क के भेद को सत्य मानता है, वह मूलतः भूल कर रहा है, क्योंकि दोनों की कुलगत श्रेष्ठता का दावा मिथ्या है। इस प्रकार कबीर धर्म के नाम पर खड़ी की गई दीवारों को ढहाकर मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने का कार्य करते हैं।

कबीर ने जिस प्रकार धर्म की मौलिक और आन्तरिक व्याख्या की है, उसी प्रकार हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण और काजी की भी अपनी विशिष्ट परिभाषा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार सच्चा हिन्दू या सच्चा मुसलमान वही है जिसका ईमान और धर्म शुद्ध हो। इसी तरह ब्राह्मण वही है जिसे ब्रह्मज्ञान हो और काजी वही है जो रहमान को सही अर्थों में जानता हो। इस व्याख्या से स्पष्ट होता है कि कबीर के लिए धर्म बाहरी पहचान नहीं, बल्कि आन्तरिक सत्य और नैतिकता का प्रश्न है।

कबीर काव्य के सामाजिक पक्ष पर दृष्टि डालने से यह भली–भाँति स्पष्ट हो जाता है कि उनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय' या किसी एक वर्ग के हित के लिए नहीं, बल्कि 'बहुजन हिताय' रचा गया था। उन्होंने अपने युग की अच्छाइयों और बुराइयों को पूरी ईमानदारी और व्यापकता के साथ देखा और अनुभव किया। उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति में कोई अन्तर नहीं था; जो उन्होंने जिया, वही उन्होंने कहा। उनका विरोध न तो ईर्ष्या से प्रेरित था और न ही अहंकार से, बल्कि समाज के प्रति गहरी जिम्मेदारी की भावना से उपजा था।

कबीर ने मिथ्याचार, आडम्बरों और सामाजिक कुरीतियों का विरोध केवल विध्वंस के लिए नहीं किया, बल्कि उसके साथ एक रचनात्मक दृष्टि भी प्रस्तुत की। वे ऐसे समाज की कल्पना करते थे जो सत्य, प्रेम और समानता पर आधारित हो। उनके लिए धर्म मन और हृदय की वस्तु था और समाज उनका आदर्श, जिसमें 'सन्त' प्रवृत्ति के मनुष्यों का निवास हो। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि कबीर ने न केवल अपने युग को समझा, बल्कि युगीन परिस्थितियों के अनुरूप समाज सुधार का सशक्त प्रयास भी किया। समाज सुधार की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में बहुत कम कवि ऐसे हैं जो कबीर की ऊँचाई और प्रभाव के समकक्ष खड़े हो सकें।

निष्कर्षतः कबीर केवल संत–कवि नहीं, बल्कि युगद्रष्टा समाज सुधारक थे। उन्होंने अपने समय की धार्मिक, सामाजिक और नैतिक विकृतियों को गहराई से देखा और निर्भीक होकर उनका विरोध किया। जातिवाद, छुआछूत, पाखण्ड, वासना, साम्प्रदायिकता और बाह्याचारों को उन्होंने मानवता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा माना।

इसके स्थान पर उन्होंने प्रेम, करुणा, समता, सत्य, संयम और आन्तरिक शुद्धता पर आधारित वास्तविक धार्मिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया। कबीर की दृष्टि में धर्म मन और हृदय की वस्तु है, न कि कर्मकाण्ड या संकीर्ण पहचान। उनका काव्य हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच और व्यक्ति-समाज के बीच समन्वय स्थापित करता है तथा 'बहुजन हिताय' की भावना से प्रेरित है। इस प्रकार कबीर ने अपने युग को न केवल समझा, बल्कि मानवता, समानता और सौहार्द्र पर आधारित समाज के निर्माण की दिशा भी दी, जिससे उनका संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक और प्रेरणादायी बना हुआ है।

☆☆☆